तृतीय अध्याय

प्रो॰ 'मागध' कालीन असमिया आलोचना एवं प्रसिद्ध आलोचक

भूमिका :

पिछले अध्याय में डॉ॰ 'मागध' के जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं साहित्यिक कृतित्व पर विचार करने के पश्चात प्रस्तुत अध्याय में 'मागध' जी ने जब लिखना आरंभ किया उस समय असमिया आलोचना की स्थिति कैसी थी? उस पर विचार करना आवश्यक है । साथ ही उस समय के कुछ एक असमिया समालोचक साहित्यिक पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है । प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए 'मागध' कालीन असमिया आलोचना तथा उस समय के कुछ एक प्रसिद्ध असमिया समालोचक पर प्रकाश डाला गया हैं ।

3.1 डॉ॰ 'मागध'कालीन असमिया आलोचना : -

असमिया साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक डॉ॰ बिरिञ्चि कुमार बरुआ ने समालोचना के बारे में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है "समालोचना एक ओर साहित्य का अनुगामी है तो दूसरी दृष्टि से उसका पूर्वगामी भी । एक पुष्ट तथा वैचित्र्य पूर्ण साहित्य की सृष्टि के बिना समालोचना भी आगे नहीं बढ़ सकती और समालोचना ही साहित्य को दिशा निर्देश कर साहित्य की सृष्टि की ओर अग्रसरित करती है ।"[१]

डॉ॰ 'मागध' ने आलोचना शब्द पर विचार करते हुए कहा है कि "आलोचना, समालोचना और समीक्षा तीनों समान अर्थ के द्योतक है ।"[२] समालोचना का अर्थ है 'प्रारम्भ से अंत तक सम्यक रूप से देखना (सम+आ+लोचन+आ) समीक्षा का भी यही अर्थ है – सम्यक रूप से देखना (सम+ईक्ष+आ) साहित्य की किसी भी विधा को देखना और परखना सामान्य कार्य नहीं है । फिर प्रत्येक ओर से सम्यक रूप में देखना तो मात्र प्रतिभाशाली व्यक्तियों का ही कार्य हैं ।

असमिया आलोचना के विकास पर विचार करते हुए डॉ॰ 'मागध' ने संक्षेप में कहा है कि "असमिया आलोचना मुश्किल से सवा सौ वर्ष पुराना है । यद्यपि शंकरदेव ने 'पीताम्बर' की

कविता को 'शाक्त और कामसिक' और माधव कंदली को 'अप्रमादी' कहा था, किन्तु इन कथनों को आलोचना नहीं सूक्तयात्मक आलोचना का प्रस्फुटन मात्र कहा जाएगा ।"[3]

इन कथनों पर दृष्टि डालने के बाद असमिया आलोचना के आरंभ और विकास के साथ ही 'मागध' कालीन असमिया आलोचना पर प्रकाश डालना आवश्यक है । असमिया की पहली पत्रिका रही 'अरुणोदोई' (सन 1846-1880) । यह मिशनरियों की पत्रिका थी । इसने आलोचना के विकास में कोई भूमिका नहीं निभायी । सन 1855 ई॰ में आनंदराम ढेकियाल फुकन ने 'A Few Remarks on Assamese Language' नामक पुस्तिका लिखी जो भाषिक आलोचना के क्षेत्र में पहली पुस्तक रही । 'अरुणोदोई' युग में 'आसाम विलासिनी'(1871- 83), 'आसाम मिहिर'(1872-73), 'आसाम दर्पण'(1874-75), 'आसाम बंधु'(1885-86) नामक पत्रिकाएँ निकली, किन्तु इनमें से किसी ने असमिया आलोचना के विकास में कोई योगदान नहीं दिया । असमिया आलोचना का वास्तविक विकास शुरू हुआ 'जोनाकी' नामक पत्रिका से । इस पत्रिका के माध्यम से कई लोग सामने आये । डॉ॰ 'मागध' के अनुसार आनंदराम ढेकियाल फुकन, लंबोदर बरा, सत्यनाथ बरा, हेमचन्द्र गोस्वामी, कालिराम मेधी, देवानन्द भराली, देवेन्द्रनाथ बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा, कृष्णकांत संदिकै, सूर्यकुमार भुईया, डिंबेश्वर नेओग, वाणिकांत काकती, विरिंचि कुमार बरुवा, हेम बरुवा, उपेन्द्रचन्द्र लेखारु, नीलमणि फुकन आदि क्रमश: कुछ न कुछ वैसा लिखते चले गए जिनसे असमिया आलोचना समृद्ध हुई । श्री चन्द्रकुमार अगरवाला द्वारा संपादित 'जोनकी' मासिक पत्रिका 'असमिया भाषा उन्नति साधनी सभा' का मुख पत्र था । उसमें कृपावर बरुवा का समालोचना प्रकाशित हुआ था । 'जोनाकी' पत्रिका इतनी प्रसिद्ध हुई कि उसी के नाम पर 'जोनाकी युग' चल पड़ा । इस समय एक और पत्रिका 'बिजुली'(1880) शुरू हुई, उसमें भी लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा, रघुनाथ चौधारी, चन्द्रकुमार अगरवाला, हेमचन्द्र गोस्वामी, रजनीकान्त बोरदोलोई, सत्यनाथ बरा, कालिराम मेधी, पद्मनाथ गोहाई बरुवा, कमलाकांत भट्टाचार्य आदि लिखा करते थे । सत्यनाथ बरा ने 'साखी', 'चिंताकलि', 'साहित्य विचार' जैसी भावचिंतन युक्त रचना लिखी । इनके द्वारा रचित 'साहित्य विचार' को ही असमिया आलोचना साहित्य का पहला शुद्ध

आलोचनात्मक ग्रंथ माना जाता है । इस समय तक भारतीय आलोचना पर प्राय: लोगों का ध्यान नहीं आया था । पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन शुरू हो आया था, उसके कारण आलोचना पर पश्चिमी प्रभाव काफ़ी पड़ा ।

बेजबरुवा जी ने असम के मध्यमणि, वैष्णव धर्म के प्रचारक शंकरदेव पर आलोचनात्मक पुस्तक लिखी जो असमिया साहित्य के लिए स्तम्भ स्वरूप खड़ी हुई । यह पुस्तक आधुनिक असमिया साहित्य का पहला समालोचनात्मक ग्रंथ के रूप में परिचित है । विरिंची कुमार बरुआ ने इस पुस्तक पर अभिमत व्यक्त करते हुए कहा है "The first major book was L. N. Bezbarua's biographical treatise, Sankardeva. In this critical study , Bezbarua gave not only a just estimate of the life and teachings of Sankardeva in a rational restrained way, but also a brilliant appreciation of the literary works of the Vaisnavite reformer."[४]

इस पुस्तक में भाषा एवं वर्णनात्मक सौंदर्य के उद्धतन में लेखक ने मनोनिवेश किया । इसमें परिचय सूचक प्रशंसनात्मक समालोचना का रूप देखने को मिलता है । बेजबरुवा जी ने अपने "श्री श्री शंकरदेव और माधवदेव" नामक पुस्तक में शंकरदेव को हृदयंगम करने के लिए पाठकों से कहा है "शंकरदेव जिस समय, जिस राजा के अधीन निवास कर, पराक्रमी-स्वार्थी राजा और पराक्रमी ब्राह्मणों से विरुद्धचरण कर, अपना धर्ममत निर्भय होकर, अपने जीवन को मुट्ठी में बांध घूम रहे थे, उसे अनुभव करने पर ही उनके निस्वार्थ, निर्भीक, धर्मप्रवण और ईश्वर में विश्वास और उनके निर्गुण-निराकार आराध्य की भक्ति को हृदयंगम कर सकते है, अन्यथा नहीं ।"[५] देवेन्द्रनाथ बेजबरुवा द्वारा 'असमिया साहित्यर बुरंजी' (1912) में यद्यपि सूक्ष्म आलोचना का अभाव है फिर भी यह असमिया की पहली ऐसी रचना है जिसमें असमिया साहित्य एवं साहित्यकारों का परिचय मिलता है । हेमचन्द्र गोस्वामी के 'असमिया साहित्यर चानेकी' (1923-29) के प्राककथन में भी असमिया साहित्य के विषय में काफ़ी जानकारी मिलती है । इनके द्वारा ही अंग्रेजी में रचित 'A Descriptive Catalogue of Assamese Manuscripts'(1930) में प्राचीन असमिया साहित्य के सभी लेखकों और रचनाओं का परिचय मिलता हैं । डिंबेश्वर नेओग (1899-1961) ने इस क्षेत्र में

काफ़ी उल्लेखनीय अवदान दिया । उनके द्वारा रचित 'आधुनिक असमिया साहित्यर बुरंजी'(1936), 'असमिया साहित्यर बुरंजित भूमुकी'(1940), 'असमिया साहित्यर बुरंजी'(1956) में असमिया भाषा-साहित्य के उद्भव-विकास एवं अन्य क्षेत्रों पर विस्तार से आलोचना की गयी है । 'असमिया साहित्यर जिलिकणी' (1939), 'असमिया साहित्यर ज्योति' (1952) और उनके द्वारा रचित कई निबंधों में असमिया साहित्य पर आलोचना की गयी है । उनके विचारों का प्रस्फुटन उनकी रचनाओं में हुआ हैं । उन्होंने प्रमुखत: साहित्य के सौंदर्य उदघाटन में मनोनिवेश किया था । वैष्णव साहित्य से लेकर आधुनिक युग के कई लेखक एवं कवि तथा उनके साहित्य का विचार-विश्लेषण उन्होंने किया है ।

भाषातात्विक आलोचकों में देवानन्द भारली, कलिराम मेधि और वाणिकांत काकति प्रमुख है । साहित्यिक आलोचना का पथ प्रशस्त किया सत्यनाथ बरा ने । अन्य प्रमुख आलोचकों में सेनापति देव शर्मा, हरमोहनदास, डिंबेश्वर नेओग, विरिंचि कुमार बरुवा के नाम प्रमुख हैं । डिंबेश्वर नेओग, विरिंचि कुमार बरुवा, एवं वाणिकांत काकति के कई महत्त्वपूर्ण कार्य इस काल के उपरांत ही सामने आया । सन 1937 ई॰ में 'जयन्ती' पत्रिका के प्रकाशन से जहाँ एक ओर नवीन भावी युग के सूत्रपात का संकेत होने लगता है, वहीं इस युग की समाप्ति तक इस युग के अधिकांश महान साहित्यकारों का अंत भी हो जाता है ।

आधुनिक असमिया साहित्य के श्रेष्ठ आलोचक रहे है डॉ॰ वाणिकांत काकति । आधुनिक युग के विभिन्न कवियों के काव्य की भूमिका जो उन्होंने लिखी है, उनमें उनकी समालोचनात्मक दृष्टि सामने आयी है । धर्म एवं साहित्य के संदर्भ में रचित निबंधों में भी उनकी समालोचक प्रतिभा का परिचय मिलता है । महज बीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने महापुरुष शंकरदेव पर एक छोटी पुस्तक अंग्रेजी में लिखी, जो सन 1923 ई॰ में जी. ए. नटेसन एण्ड कंपनी, मद्रास (तमिलनाडु) से प्रकाशित हुई थी, वह पुस्तक अनुपलब्ध रही । न तो उसका प्रकाशन उनकी स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर हो सकी और न असम प्रकाशन परिषद ने ही किया । इसका एकमात्र कारण

पुस्तक की अनुपलब्धता रही । अनुपलब्ध होने के कारण पुस्तक का अनुवाद एवं उनके कुछ अप्रकाशित लेखों के साथ उसका प्रकाशन डॉ॰ भूपेंद्र नाथ राय चौधुरी ने किया है । आधुनिक युग के विभिन्न कवियों के काव्य की भूमिका जो उन्होंने लिखी है, उनमें उनकी समालोचनात्मक दृष्टि सामने आयी है । धर्म एवं साहित्य के संदर्भ में रचित निबंधों में भी उनकी समालोचक प्रतिभा का परिचय मिलता है । 'चेतना' नामक पत्रिका में उनकी प्राचीन असमिया साहित्य पर कई लेख प्रकाशित हुए । 'पुरोनी असोमिया साहित्य'(1940), और 'साहित्य आरू प्रेम'(1948) उनके द्वारा रचित ऐसे दो ग्रंथ हैं जिनमें उनकी समालोचनात्मक अध्ययनशीलता और पांडित्य का प्रतिफलन हुआ है । उनके रचनाओं को पढ़ने से तथा उनके गद्य में प्रयुक्त शब्द, उदाहरण आदि के प्रयोग रीति को देखकर लगता है कि उन्होंने प्राच्य एवं पाश्चात्य साहित्य का गंभीर रुप से अध्ययन किया था । संस्कृत और पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन ने उन्हें तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक आलोचना करने में प्रेरणा प्रदान की थी । वे किसी भी कृति अथवा कृतिकार या विषय की आलोचना जड़ में जाकर करते थे । भाषा, अलंकार, शब्द, वाक्य संरचना हो या भाव की अभिव्यक्ति वे प्रत्येक वस्तु को ध्यान में रखकर वैज्ञानिक दृष्टि एवं युक्ति से विचार करते थे । उनकी पर्यावेक्षण क्षमता अंतर्भेदी और अतीव शुक्ष्म थी । 'वाणीप्रतिभा' उनके मृत्यु के पश्चात प्रकाशित निबंध संग्रह हैं जिसमें कई आधुनिक कवि एवं उनके काव्य का मूल्यांकन कर उनके विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया हैं । 'बिजुली' नामक पत्रिका में असम के वैष्णव मत के प्रचारक और वैष्णव मत पर कई लेख प्रकाशित किए । सामान्य रूप में कह सकते है की वाणिकांत जी ने असमिया आलोचना साहित्य को पुष्ट करते हुए नया आयाम दिया । उनकी देन असमिया आलोचना साहित्य को अपरिमेय है । 'पुरोनी असमिया साहित्य'(1940) और 'साहित्य आरू प्रेम'(1948) उनके द्वारा रचित ऐसी दो पुस्तकें हैं जिनमें उनकी समालोचनात्मक अध्ययनशीलता और पांडित्य का प्रतिफलन हुआ है । "उनकी 'पुरोनी असमिया साहित्य'(1940), 'साहित्य आरू प्रेम'(1948)- इन दोनों ग्रंथों में और आधुनिक कवियों के काव्य की भूमिका में और धर्म और साहित्य से संबंधित समालोचनात्मक निबंधों में काकती का पांडित्य, मननशीलता और

विषयवस्तु का गहन ज्ञान परिलक्षित हुआ है ।"[६] उनकी रचनाएँ पढ़ने से और उनके गद्य में प्रयुक्त शब्दादि की प्रयोग रीति को देखकर लगता है कि उन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया था । उनके विचार बड़े विश्लेषणात्मक और गंभीर होते थे । उनकी पर्यावेक्षन क्षमता अंतर्भेदी और अतिशुक्ष्म थी । उनकी मृत्यु के पश्चात प्रकाशित 'वाणी प्रतिभा' में कई आधुनिक कवियों और उनके काव्यों का मूल्यांकन किया गया है । असमिया आलोचना को उनकी देन अतुलनीय है ।

डॉ॰ विरिंची कुमार बरुवा द्वारा अंग्रेजी में रचित 'History of Assamese literature'(1941) भी इस क्षेत्र में काफ़ी महत्त्वपूर्ण है । इस पुस्तक में असम और असमिया भाषा, वैष्णव के उद्भव एवं विकास तथा साहित्य, आहोम एवं उस काल के असमिया साहित्य, आधुनिक काल का प्रारम्भ, काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना साहित्य, अन्य गद्य साहित्य आदि पर विचार-विश्लेषण किया गया हैं । उनके द्वारा रचित 'काव्य आरू अभिव्यंजना' उच्च कोटि का समालोचनात्मक ग्रंथ है । इसमें क्रोचे द्वारा प्रतिष्ठित अभिव्यंजनावाद और संस्कृत साहित्य और अलंकार शास्त्र पर विचार-विश्लेषण किया गया है । 'असमिया कथा साहित्य' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ में उन्होंने असमिया गद्य साहित्य के उद्भव एवं मूल्यांकन पर विचार किया है । असमिया लोगों के जीवन तथा उनकी संस्कृति पर विचार करते हुए उन्होंने जो निबंध लिखा है वह 'असमिया भाषा आरू संस्कृति' में संकलित है । उन्होंने अंकियानाट, श्री राम आता आरू रमानंदर गीत नामक प्राचीन असमिया पुस्तकों का सम्पादन करते हुए प्राक्कथन में असमिया साहित्य-संस्कृति के प्राचुर्य पर समालोचनात्मक टिप्पणी लिखी है । वैष्णव साहित्य पर विचार करते हुए उन्होंने कहा है – "Next to the Bhagavata, the Mahabharata exercised tremendous influence on the Vaisnavite poets as this epic was also considered a Vaisnavite scripture. The Vaisnavite poets naturally turned it into an instrument for popularization and propagation of their own doctrines."[७]

आधुनिक काल के असमिया समालोचकों में हम नाम ले सकते हैं उमाकांत शर्मा, त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, अतुलचन्द्र बरुवा, हेम बरुवा, यज्ञेश्वर शर्मा, बापचन्द्र महंत, होमेन बरगोहाई, डॉ॰ हीरेन गोहाई, बीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य, उपेंद्रनाथ गोस्वामी, गोलोकचन्द्र गोस्वामी, सत्येंद्र नारायण गोस्वामी, तीर्थनाथ शर्मा, प्रमोद भट्टाचार्य, भवेन बरुवा आदि ।

उमाकांत शर्मा की 'काव्य भूमि' में साहित्य में रस की उपयोगिता पर विचार किया गया है । हेम बरुवा द्वारा रचित 'आधुनिक साहित्य'(1950), 'साहित्य आरू समस्या'(1979) आदि ग्रंथों में आधुनिक चिंतन-धारा, आदर्श और पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है । अतुलचन्द्र बरुवा की 'साहित्यर रूप रेखा'(1947) में साहित्य के लक्षण' संज्ञा आदि पर आलोचना की गयी है । 'समालोचना साहित्य'(1958), 'साहित्य-जीवन', 'असमिया काव्यर प्रेमर केकेती सूँती'(1970) में अतुल जी ने व्याख्यात्मक शैली में असमिया साहित्य की आलोचना प्रस्तुत की है ।

ऊपर वर्णित असमिया आलोचना-विकास कथा को 'मागध' जी ने अपने एक लेख में बड़े संक्षेप में इतना ही लिखा है कि 'आधुनिक असमिया आलोचना 'जोनाकी' युग से शुरू होती है एवं बड़ी मंद-मंथर गति से पचासों व्यक्तियों के हाथों आगे बढ़ चलती है ।' पिछली शती के चौथे दशक तक दो स्वतंत्र परम्पराएँ विकसित हुई – विश्लेषणात्मक परंपरा और वर्णनात्मक परंपरा । पहली परंपरा के नेता थे- डॉ॰ वाणिकांत काकती और दूसरी परंपरा के नेता थे डॉ॰ विरिंचि कुमार बरुवा । यही परंपरा आगे डॉ॰ 'मागध' के समय में चल रही थी । प्राय: सभी आलोचक इन्हीं दो खेमों में सुविधापूर्वक रखे जा सकते हैं । एक तीसरा खेमा प्रगतिवादियों का था । डॉ॰ वाणिकांत काकती की परंपरा को आगे बढ़ाया डॉ॰ महेश्वर नेओग ने और डॉ॰ विरिंचि कुमार बरुवा की परंपरा में डॉ॰ सत्येन्द्र नाथ शर्मा सामने आए । डॉ॰ 'मागध' ने जब गुवाहाटी विश्वविद्यालय में पद ग्रहण किया तब ये दोनों व्यक्ति (महेश्वर नेओग और सत्येंद्र नाथ शर्मा) कार्यरत थे और इनकी लेखनी का जादू सब पर छाया था । प्रत्येक क्षेत्र में इन दोनों का ही नाम चलता था । डॉ॰ 'मागध' के

'नीलाचल' में छपे लेख 'शंकरदेवर मूल्यायनर समस्या' (1972, शारदीय अंक) के पश्चात ही लोग डॉ॰ 'मागध' के नाम से परिचित हुए और तब से वे निरंतर असमिया साहित्य और समाज के विषय में ही प्राय: लिखते रहे । हिंदी साहित्य से संबंधित लेख कुछ विशेष विद्वानों के आग्रह पर ही लिखा । यह क्रम प्राय: सन 1985 ई॰ तक चला, उसके पश्चात उनके लेखन में एक तीसरा मोड़ आया जिसकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है । सिर्फ इतना ही कहना आलम है कि आगे उन्होंने मूलतः हिन्दू देवत्व शास्त्रीय ग्रंथों का लेखन किया ।

आधुनिक असमिया भाषा के इन समालोचकों ने मिलकर असमिया आलोचना साहित्य की उत्तोरोत्तर विकसित किया ।

3.2 'मागध' कालीन असमिया समालोचक :

डॉ॰ 'मागध' ने जिस समय असमिया साहित्य और समाज पर लेखन शुरू किया, उस समय स्पष्टत: आलोचना की दो धाराएँ चल रही थी । पहली धारा थी विश्लेषणात्मक और गवेषणात्मक जिसका नेतृत्व डॉ॰ वाणिकांत काकती की परंपरा में डॉ॰ महेश्वर नेओग कर रहे थे । दूसरी धारा मूलतः वर्णनात्मक थी । यद्यपि इसमें भी विश्लेषण का अभाव नहीं था, इसका नेतृत्व डॉ॰ विरिंचि कुमार बरुवा की परंपरा में डॉ॰ सत्येन्द्रनाथ शर्मा कर रहे थे । अन्य सभी आलोचकों को प्राय: किसी न किसी रूप में इन्हीं दो धाराओं में रखा जा सकता हैं । एक तीसरी धारा भी प्रचलित है जो प्रगतिवादियों की कही जा सकती है । प्रगतिवादी आलोचकों में डॉ॰ हीरेन गोहाई, होमेन बोरगोहाई का नाम ले सकते हैं ।

यहाँ संक्षिप्त रूप में 'मागध' कालीन कुछ एक प्रसिद्ध असमिया समालोचकों पर प्रकाश डाला जा रहा है ।

त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी द्वारा रचित 'साहित्य आरू समालोचना' में आलोचना साहित्य की विभिन्न धाराओं एवं विशिष्टता आदि पर विचार किया गया है । 'असमिया गल्प

साहित्य'(1966), 'इंग्राजी साहित्यर धारा आरू असमिया साहित्यत तार प्रभाव'(1970), नन्दन तत्व- प्राच्य आरू प्राश्चात्य'(1980) ऐसी ही पुस्तकें हैं ।

सत्येंद्रनाथ शर्मा आधुनिक काल के अनुभवी समालोचक रहे है । उनके द्वारा रचित 'असमिया उपन्यासर भूमिका', 'उपन्यासर गतिधारा', 'असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत' ऐसी समालोचनात्मक पुस्तकें हैं, जिनमें असमिया साहित्य के विकास पर गहराई से चर्चा की गयी है । 'असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत' नामक पुस्तक में सत्येंद्र नाथ जी ने समालोचना के महत्त्व का आंकलन करते हुए कहा है कि "समालोचना एक ओर से साहित्य का अनुगामी है तो दूसरी दृष्टि से उसका पूर्वगामी भी है । एक पुष्ट तथा वैचित्र पूर्ण साहित्य की सृष्टि के बिना समालोचना भी आगे नहीं बड़ सकती है; और समालोचना ही साहित्य को दिशा निर्देश कर साहित्य की सृष्टि की ओर अग्रसरित करती है ।"[८] मौखिक साहित्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने 'असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत' पुस्तक में लिखा है "आमी जोदि ओचोर चुबुरिया पर्वोतिया जातिबोरोलोई लोख्य करो तेंते देखिबोलोई पाम तेओलोकर बहुतोरे लिखित साहित्य नाइ; किन्तु मुखे-मुखे प्रचलित गीत-मात आरू साधूकोथार प्रचलन आचे। सेईदोरे सकोलो जातिरे साहित्यइ लिखित रूप पोवार आगोते मौखिक गीत-मात, प्रवचन आरू साधूकोथा थोकार प्रमाण पोआ जाय । असमिया भाषातो तेने धरनर लोकोगीत, साधूकोथा, प्रवचन होयतो प्रचलित आचिल । साहित्यइ लिखित रूप पोवार पीचोतो आनकी एतियाओ, निरख्यार जनसमाजोत मुखे-मुखे गीत-पद रचना करि मौखिक भावे प्रचलन होवार रीति चली आचे (यदि हम आस-पास के पहाड़ी जन-जातिओं को देखे तो पाते हैं कि इनमें से ज्यादातर के पास लिखित साहित्य नहीं हैं परंतु मौखिक गीत-साहित्य और कहानियाँ प्रचलित हैं । इसी प्रकार सभी जाति के साहित्य का लिखित रूप मिलने से पहले मौखिक गीत-साहित्य, प्रवचन और कहानियाँ आदि मिलने का प्रमाण मिलता है । असमिया भाषा में भी शायद वैसे ही लोकगीत, प्रवचन आदि प्रचलित थे । साहित्य को लिखित रूप मिलने के बाद भी निरक्षर जन-मानस में अभी भी मौखिक गीत-पद का प्रचलन चल रहा है ।)"[९]

समकालीन आलोचकों में प्रमुख आलोचक थे महेश्वर नेओग जी । उनके द्वारा रचित 'आधुनिक असमिया साहित्य' (1965), 'असमिया गीति-साहित्य'(1948), 'असमिया साहित्यर रूपरेखा'(1962) में प्राचीन असमिया गद्य साहित्य पर विचार किया गया है । 'असमिया साहित्यर रूपरेखा' पुस्तक में असमिया साहित्य में समालोचना का प्रभाव कैसे पड़ा उस पर विचार करते हुए कहा है "साहित्य समालोचना असमिया साहित्य में पाश्चात्य के दान स्वरूप आया है । अंग्रेजी रोमांटिक साहित्य में समालोचना एक विशिष्ट अंग के रूप में परिगणित हुई थी ।"[१०] नेऔग जी ने असम के दोनों महापुरुषों पर गवेषणामूलक और चिंतनीय जितने भी लेख लिखे हैं उनका संकलन "शंकरदेव और माधवदेव" शीर्षक ग्रंथ में किया गया है । इस कृति के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए असमिया के प्रसिद्ध साहित्यकार नगेन शइकिया जी ने कहा है "डॉ॰ नेओग जी ने श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव के विषय में तथा इन दोनों संतों के अविस्मरणीय कृति के बारे में जो भी वैज्ञानिक दृष्टि से कार्य किया है वह जिज्ञासु पाठक और गवेषकों के लिए पाठ्य बने रहेंगे ।"[११]

असमिया वैष्णव आलोचना साहित्य के समालोचक रहे है – बापचन्द्र महंत । 'जीवन आरू साहित्य'(1962), 'साहित्य दर्शन'(1963), 'महापुरुष शंकरदेव'(1964), 'भारतीय धर्म साधना'(1967), 'नामघोषार तत्वदर्शन'(1978), 'ऐतिहासिक पटभूमित महापुरुष शंकरदेव'(1987), 'युगांतरत शंकरदेव'(1991), 'पटभूमि सहित शंकदेवर दर्शन'(1994), 'बरगीत'(1992), 'शंकरदेवर व्यक्तित्व आरू सत्र वैवस्था'(2005), 'असम में भगवत धर्म और शंकरदेव का दर्शन'(1999), 'सामाजिक पटभूमि सहित असम के बरगीत'(1988) आदि ग्रंथों में उन्होंने विश्लेषणात्मक ढंग से साहित्य पर चर्चा करते हुए समालोचना साहित्य को पुष्ट किया है । लखिनाथ तमूली जी ने अपने लेख में महंत जी के शंकरी साहित्य पर कहा है "बापचन्द्र महंत जी ने ही शंकरदेव के भक्ति धर्म के दर्शन की जड़ खोज कर दार्शनिक परिभाषा से अद्वेतलीला नाम से अभिहित किया था, जो आज भी मान्य है ।"[१२] मेरी दृष्टि में असमिया वैष्णव साहित्य विशेषत:

शंकरदेव और माधवदेव पर जितनी गहराई से श्री बापचन्द्र महंत ने विचार किया है, शायद वह अपने में अद्‌वितीय है ।

प्रफुल्ल दत्त गोस्वामी के 'असमिया जन साहित्य'(1948), 'साहित्य आरू जीवन'(1956) में असमिया गद्‌य परंपरा तथा साहित्य एवं तीर्थनाथ शर्मा की 'पंच पुष्पित'(1969), 'भक्तिवाद'(1978), 'साहित्य विद्‌या परिक्रमा'(1962), भी उल्लेखनीय समालोचनात्मक पुस्तकें हैं । उपेंद्र नाथ गोस्वामी की 'भाषा आरू साहित्य' में साहित्य की विविध दृष्टि से आलोचना की गयी है । भवेन बरुवा द्‌वारा रचित 'नतुन समालोचना' भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय अवदान है । प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' का नाम भी असमिया आलोचना के क्षेत्र में बड़ा उल्लेखनीय है, जिनकी कई पुस्तकें, बीसों लेख आदि प्रकाशित हो चुके हैं ।

डॉ॰ 'मागध' ने तत्कालीन असमिया आलोचना पर विचार करते हुए स्वीकार किया है कि वह पश्चिमी आलोचना से प्रभावित थी । उसे एक सीमा तक पश्चिमी आलोचना की उद्धरणी वाली आलोचना कही जा सकती है । भारतीय काव्यशास्त्र की इतनी लंबी और पुष्ट परंपरा होने के बावजूद अधिकांश असमिया आलोचक प्राय: उससे अपरिचित दिखती हैं । डॉ॰ 'मागध' ने भारतीय और पाश्चात्य दोनों आलोचना प्रणालियों पर विचार करते हुए लिखा है कि "भारतीय काव्यालोचना मूलत: शब्द (अर्थात अभिव्यक्ति)-जीवी है और योरोपीय भाव जीवी । परीक्षण हेतु भारतीय आचार्य सदा कृति को ही केंद्र में रखते हैं जबकि योरोपीय आलोचक कृति की जगह कर्ता (व्यक्ति) को महत्त्व देते रहे है । फलितार्थ इतना भर है कि भारतीय आलोचना वस्तु अथवा विषय पर और शब्दाश्रित अर्थात अभिव्यक्तिपरक हुई है और पश्चिमी आलोचना मूलत: व्यक्ति (कर्ता) अथवा विषयीपरक और अर्थाश्रित अर्थात भावपरक । कृति के अभिव्यक्ति-सौंदर्य की परख हेतु भारतीय पद्धति अद्‌वितीय सिद्ध हुई है । पश्चिम के आई. ए. रिचर्डस ने इसे ही 'प्रेक्टिकल क्रिटिसिज़्म' के रूप में प्रवर्तित किया है ।"[१३]

डॉ॰ 'मागध' कालीन प्रगतिवादी आलोचकों में डॉ॰ हीरेन गोहाई और होमेन बरगोहाई के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं । होमेन बरगोहाई और डॉ॰ हीरेन गोहाई इस काल के सशक्त प्रगतिशील आलोचक रहें हैं । होमेन बरगोहाई की रचना 'विश्वास आरू संसय'(1968), 'जिज्ञासा'(1979) और हिरेन गोहाई की रचना 'साहित्य आरू सत्य'(1971), 'साहित्य आरू चेतना'(1976), आदि रचनाएँ ज्यादा प्रख्यात रही हैं । प्रगतिवादियों से भिन्न प्राय: शेष आलोचक, जैसे पहले कहा गया है, डॉ॰ नेओग और डॉ॰ शर्मा के खेमे में ही लिखते रहे । डॉ॰ 'मागध' की आलोचना इस समय निरंतर चलती रही । उन्होंने वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा गवेषणात्मक प्रक्रिया से असमिया के महान संत श्रीमंत शंकरदेव तथा माधवदेव पर ग्रंथ लिखना आवश्यक समझा और अपनी अध्ययनशीलता से अथक परिश्रम कर इन पर रचना लिखी ।

निष्कर्षत: यह स्पष्ट होता है कि आलोचना ही साहित्यिक कृति या कृतिकार को परिपूर्णता प्रदान करती है । यहाँ असमिया साहित्य के आलोचना के प्रारम्भ से लेकर उसके विकाश तथा असमिया के गण्य-मान्य आलोचक और उनकी आलोचना पर संक्षिप्त रूप से विचार किया गया । अरुणोदोई युग से असमिया आलोचना का प्रारम्भ हुआ और आज भी असमिया आलोचना का विकास हो रहा है । असमिया साहित्य के प्रमुख आलोचकों में हम लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, सत्यनाथ बोरा, वाणिकांत ककती, बिरिञ्चि कुमार बरुआ, त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, सत्येंद्रनाथ शर्मा, महेश्वर नेओग, अतुलचन्द्र बरुआ, भवेन बरुआ, कृष्ण नारायण प्रसाद का नाम उल्लेख कर सकते हैं । इन आलोचकों ने असमिया आलोचना साहित्य को नया आयाम दिया । इनमें कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध' जी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने असमिया आलोचना साहित्य को राष्ट्रीय क्षेत्र में उभारा । उन्होंने असमिया आलोचनात्मक ग्रंथों के माध्यम से असमिया वैष्णव साहित्य, रामायणी साहित्य तथा असम में वैष्णव मत के प्रचारक शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव को राष्ट्रीय प्रेक्षापट में प्रतिष्ठित किया ।

संदर्भ सूची और टिप्पणियाँ :

१. डॉ॰ सत्येन्द्रनाथ शर्मा, *असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिब्रित्त*, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2013, पृष्ठ संख्या 376

२. 'मागध', प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *हिंदी साहित्य युग और धारा*, भरती भवन, पटना, 1965, पृष्ठ संख्या 393

३. 'मागध', प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, महेश्वर नेओग : ए क्रिटिक एण्ड लिटेरेरी हिस्टोरियन(आलेख) 1979

४. बरुआ डॉ॰ बिरिञ्चि कुमार, *History of Assamese Literature*, साहित्य अकादेमी, कोलकाता , 2003 पृष्ठ संख्या 190

५. बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ, *श्री श्री शंकरदेव और माधवदेव*, बिदयाभवन, जोरहाट, पृष्ठ संख्या घ

६. शर्मा, डॉ॰ सत्यैंद्रनाथ, *असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त*, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2013, पृष्ठ संख्या 374

७. बरुआ डॉ॰ बिरिञ्चि कुमार, *History of Assamese Literature*, साहित्य अकादेमी, कोलकाता , 2003 पृष्ठ संख्या 53

८. शर्मा, डॉ॰ सत्यैंद्रनाथ, *असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त*, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2013, पृष्ठ संख्या 376

९. शर्मा, डॉ॰ सत्यैंद्रनाथ, *असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त*, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2013, पृष्ठ संख्या 18

१०. नेओग, डॉ॰ महेश्वर, *असमिया साहित्यर रूपरेखा*', चंद्रप्रकाश, गुवाहाटी, 2012, पृष्ठ संख्या 314

११. नेओग, महेश्वर, *शंकरदेव और माधवदेव*, संकलक, प्रणवस्वरूप नेओग, चन्द्रप्रकाश, 2010 पृष्ठ संख्या क

१२. पद्मपाणि(सम्पा.), *दृष्टि दर्शन दिगंत*, पद्मपाणि2010, पृष्ठ संख्या 30

१३. 'मागध', प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद, *काव्यशास्त्र विमर्श*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या पुरोवाक 9